इकाई 18 पर्यावरण के प्रति दृष्टिकोण, विज्ञान और प्रौद्योगिकी*

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 भारतीय दर्शन और इसकी पर्यावरणीय दृष्टि

18.3 पारंपरिक संदर्भ में *प्रदूषण*

18.4 प्रकृति में देवत्वरोपण

18.5 प्राचीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

- 18.5.1 प्राचीन भारत में जल विज्ञान
- 18.5.2 गणित
- 18.5.3 खगोल विज्ञान
- 18.5.4 औषधि
- 18.5.5 वास्तुकला
- 18.5.6 धातुशोधन में प्रगति

18.6 सारांश

18.7 शब्दावली

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

18.9 संदर्भ ग्रंथ

18.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जानेंगे :

- विभिन्न प्रकार के प्राचीन भारतीय ग्रंथ जो पर्यावरण के रक्षण और संरक्षण की बात करते हैं;
- अतीत में प्राप्त की गयी भारतीय गणित, खगोल विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग, भवन, धातु विज्ञान के क्षेत्र में विकास और उपलब्धियाँ; और
- प्राचीन भारतीयों के जल-व्यवस्था इंजीनियरी कौशल।

18.1 प्रस्तावना

जब से मनुष्य ने इस पृथ्वी पर कदम रखा तब से पर्यावरण के साथ मानव संपर्क एक सतत् प्रक्रिया रही है। इस खंड में हम प्रकृति/पर्यावरण के साथ मानवीय संबंधों और मान्यताओं की चर्चा समाज की संचित समझ और ज्ञान के उपलब्ध संसाधनों द्वारा करेंगे। इसके उपरांत इस इकाई में हम प्राचीन भारतीयों द्वारा प्राप्त की गयी विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उपलब्धियों के बारे में जानेंगे। जिस काल के बारे में हम जानेंगे वह आरंभिक काल से 200 बी.सी.ई. तक का है।

*डॉ. शुचि दयाल, सलाहकार, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इग्नू, नई दिल्ली।

आरंभ से, पर्यावरण के प्रति चिंता भारतीय बौद्धिक और लोकप्रिय परंपराओं का एक अभिन्न अंग रही है। प्रकृति के प्रति यह संवेदनशीलता पश्चिम से संपर्क या ऋण के परिणामस्वरूप विकसित नहीं हुई बल्कि स्वतः देशीय रूप से अस्तित्व में आई। यह सांस्कृतिक प्रतिरूपों, धार्मिक प्रथाओं और सामाजिक प्रथाओं में स्पष्ट है। लोकप्रिय और प्राचीन परंपराओं में निहित ज्ञान पर्यावरण के रक्षण और संरक्षण पर ध्यान केंद्रित करता है।

18.2 भारतीय दर्शन और इसकी पर्यावरणीय दृष्टि

प्राचीन भारतीय दार्शनिक परंपराओं में, पर्यावरण के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध पक्षपोशित किया गया है। पर्यावरण को जीवंत जैविक इकाई माना जाता था। यह स्वीकार किया गया कि मनुष्य सभी प्राणियों में सबसे बुद्धिमान था। मनुष्य को पर्यावरण का एक छोटा-सा हिस्सा समझा गया जो मृत्योपरांत प्रकृति में ही मिल जाता है। भौतिक स्तर पर, मनुष्य का सभी जीवित और निर्जीव प्राणियों के साथ घनिष्ठ संबंध है। आध्यात्मिक रूप से, विभिन्न प्रजातियों के प्रति कर्त्तव्य और दायित्व से निहित एक आचरण संहिता का मनुष्य को पालन करना है। यह तथ्य स्वीकार किया गया कि पर्यावरण को न खतरे में डालना चाहिए और न ही नष्ट करना चाहिए।

प्राचीन भारतीय विचारधारा, प्रकृति के साथ सद्भाव, संतुलन और सहयोग के संबंध को निरुपित करती है। भारतीय विचारनुसार ब्रह्मांड *'सृष्टि'* का एक रूप है। सृष्टि ने पूरे ब्रह्मांड को निरुपित किया, जिसमें *'पशु', 'पक्षी'* और *'वनस्पति'* सम्मिलित है। सृष्टि का सृजन *हिरण्यगर्भ,* सोने के अंडे द्वारा हुआ और अंततः इससे निर्माण हुआ। चूँकि मनुष्य और *सृष्टि* दोनों ही ईश्वर के माध्यम से अस्तित्व में आये इसलिए इन्हें एक-दूसरे के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाए रखने की आवश्यकता है।

पृथ्वी और इसमें सम्मिलित प्रत्येक अंश को श्रद्धा और सम्मान दिया गया है। *पंच तत्वों* में से अंतिम तत्व – पृथ्वी (आकाश, जल, वायु, अग्नि और पृथ्वी) को सभी जीवित प्राणियों की माता के रूप में माना गया है। यह माना गया कि पृथ्वी की पूजा की जानी चाहिए क्योंकि यह मनुष्य के अस्तित्व को भौतिक आधार प्रदान करती है। वेदों में, पृथ्वी के संसाधनों और उनके उद्गम की निरंतरता के लिए प्रार्थना की गई। यह कहा गया कि ये केवल मनुष्यों के लिए नहीं अपितु सभी द्वारा साझा उपयोग किए जाने के लिए है।

सभी जैवीय प्राणियों का सम्मान किया गया है। पशुओं और पक्षियों को विशेष शक्तियों और बुद्धि से युक्त माना गया है। उनके पास जलवायु या वायुमंडलीय परिवर्तनों का अनुमान लगाने की शक्ति और अच्छी-बुरी घटनाओं की भविष्यवाणी करने की क्षमता है। पशुओं का वध करना प्रतिबंधित किया गया और ऐसा करना अपराध माना गया। यह भी स्पष्ट तथ्य है कि पशु अति पवित्र थे इसलिए पशुओं को देवी-देवताओं का व्यक्तिगत *वाहन* बनाया गया, इससे पशुओं के प्रति सम्मान की भावना दृष्टिगोचर होती है। उन्हें स्वयं भगवान के समरूप पूजा के योग्य माना गया। उदाहरण के लिए, इंद्र का वाहन हाथी है, शिव ने वृशभ (बैल) को अपने वाहन के रूप में अपनाया, सरस्वती ने हंस, गणेष मूषक पर विराजमान हुए और विष्णु ने वाहन के रूप में गरुड़ को पसंद किया। यहां तक कि अतीत में सम्राटों ने भी स्वीकार किया कि पशुओं के वध पर प्रतिबंध अहिंसा की नीति का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है और इसका पालन किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, पांचवें स्तंभ अभिलेख में, अशोक ने पशुओं के प्रति *अहिंसा* की अपनी नीति को रेखांकित किया। उन्होंने उन जानवरों की एक सूची दी जिनकी हत्या प्रतिबंधित थी। उदाहरण के रूप में इस सूची में तोते, मैना, लाल सर वाली बत्तख, अक्रवक-हंस, हंस नंदी-मुख, कबूतर, चमगादड़, चीटियाँ, कछुए, बिना हड्डी की मछली, बकरी, सुअर और अन्य पशुओं की हत्या प्रतिबंधित की गई थी।

यह अभिलेख, उन प्रारंभिक ऐतिहासिक अभिलेखों में से एक है जिनमें लोगों द्वारा पालन किए जाने वाली सामान्य संरक्षण प्रथाओं का उल्लेख है (मयंक कुमार, एमएचआई 08, खंड 5)।

प्रकृति के इस परोपकारी व्यवहार की व्याख्या के पदचिन्ह खोजने पर हम पाते हैं कि ऋग्वेदिक काल में ऋषियों ने प्रकृति के विभिन्न तत्वों का मानवीकरण किया और उनकी पूजा की। उन्होंने सूर्य, अग्नि, पृथ्वी आदि से आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु प्रार्थनाएं की। उनकी महिमा में प्रशंसा गीत गाये गए।

प्रकृति को देवत्व के समरूप कैसे माना जा सकता था इसका सर्वोत्तम उदाहरण नटराज या नृत्य करते शिव की आकृति है। उनके प्रतीक अग्नि और मृग हैं। उनकी जटाओं में जंगल हैं, जिसके भीतर वे गंगा को छिपा लेते हैं। उनके केश सूर्य और चंद्रमा से सुशोभित हैं। सांप उनकी माला है। बाघ की खाल उनके वस्त्र हैं। अपने डमरू की लौकिक लय पर वे सृजन, अधोगति, उत्थान और अंत में आत्मज्ञान की अनवरत प्रक्रिया को इस संसार में लाते हैं। उनकी ऊर्जा 'शक्ति' पार्वती है। उनके बिना वे अधूरे हैं। हिमालय की बेटी, 'शक्ति' को स्वयं तपस्या और प्रायश्चित करनी पड़ी'' (मयंक कुमार, एमएचआई-08, खंड 5)।

इस प्रकार प्राचीन विचारों में प्रत्येक वस्तु की कल्पना की गयी – चेतन और निर्जीव, मनुष्य और अमानुश, संपूर्ण का एक भाग है। सभी प्राणी एक-दूसरे के बिना अधूरे है। इस तरह के ज्ञान के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक वस्तु का सम्मान और संरक्षण किया जाए ताकि ब्रह्मांड व्यवस्थित ढंग से कार्य कर सके।

18.3 पारंपरिक संदर्भ में *प्रदूषण*

प्राणियों और भौतिक जगत के बीच शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के उल्लंघन को *प्रदूषण* माना गया। स्वच्छता के मानदंडों का पालन न करने और मर्यादा के उल्लंघन के कारण *प्रदूषण* बढ़ा। *प्रदूषण* का कारण मानवीय लालच और स्वार्थ था। प्रदूषित 'सृष्टि' का वर्णन निम्न शब्दों में वर्णित किया गया :

''ऐसा लगता है कि सभी तारे, ग्रह, चन्द्रमा, सूर्य, वायु, अग्नि और प्राकृतिक दिशाएं प्रदूषित हो गई हैं। ऋतुएँ भी प्रकृति के विरुद्ध कार्यरत दिखाई देती हैं, गुणों से भरपूर होने के बावजूद पृथ्वी के सभी औषधीय पौधों ने अपना रस खो दिया है। जब ऐसा प्रदूषण होगा तो व्यक्ति बीमारियों से पीड़ित होगा। ऋतुओं के प्रदूषण के कारण कई तरह की बीमारियाँ पैदा होंगी और ये देश को बर्बाद कर देगी। इसलिए, भयावह बीमारी के आरंभ से पहले औषधीय पौधों को इक्ट्ठा करें और पृथ्वी का स्वरूप बदल दें।''

(चरक संहिता, विमंसथन, 3.2 जैसा एमएचआई-08, खंड-5, इकाई-15, पृ.18 में उद्धृत किया गया है)

18.4 प्रकृति में देवत्वरोपण

भारतीय सभ्यता ने हमेशा प्रकृति और पर्यावरण की विविधता का सम्मान किया है। भारतीय विचार में, पर्यावरण एक भौतिक और बेज़ान प्राणी नहीं है, लेकिन एक बहुत ही जीवित और सक्रिय तंत्र है तथा मानव पृथ्वी पर बसने वाले विभिन्न अन्य प्राणियों में से एक है। प्रकृति के देवत्वरोपण के माध्यम से, प्राचीन भारतीय पर्यावरण के प्रति सम्मान बढ़ाने में सफल रहे।

यह पवित्र वनों के उदाहरण से स्पष्ट है। प्राचीन काल से स्थानीय, स्वदेशी देवताओं की पूजा करने के लिए पवित्र वन या देव-रहाती की स्थापना की गई। ये वैदिक काल से अस्तित्व में है। आज पवित्र वनों की संख्या में गिरावट आई है। कुछ अभी भी संरक्षित है। हालांकि, प्राचीन काल में, बड़ी संख्या में शहरों द्वारा पवित्र वनों को बनाए रखा गया था। चंपा, कुशीनगर और वैशाली में पवित्र वन थे।

भारत के प्राचीन साहित्य में हम वनों की विभिन्न श्रेणियाँ पाते हैं। 'आरण्यक' में प्राचीन ऋषि शांति से रहते थे। जंगल का एक विशेष हिस्सा जो तपस्या के लिए आरक्षित था उसे 'तपोवन' कहा जाता था। आरण्यक और *तपोवन* दोनों *अभ्यारण्य* या *मृगवन* थे, राजा, राजकुमार और आम लोग ऋषियों के ज्ञान, आशीर्वाद और मार्गदर्शन की तलाश में यहाँ आते थे। न केवल जंगलों बल्कि तालाबों, सरोवरों और नदियों को भी पवित्र माना जाता था, पूर्वज इनकी पूजा करते थे। आज भी, प्रकृति के ऐसे प्रतीकों को अतीत के पवित्र अवशेषों का रूप माना जाता है।

प्राचीन भारत में वनों और अन्य जैवयी घटकों के लिए अंतर्निहित चिंता थी। 400 बी.सी.ई. में पराशर द्वारा लिखा गया *'वृक्षायुर्वेद'* ग्रंथ वनस्पति विज्ञान पर आधारित है। इस तरह के विशिष्ट ज्ञान का प्राचीन इतिहास में मौजूद होना उल्लेखनीय है। इसमें विभिन्न प्रकार के वनों का उल्लेख किया गया है जैसे *अटावी, बिपन, गहन, कानन, वन, महारण्य* और *अरण्यानी*। क्षेत्रों के अनुसार, वनों का वर्गीकरण भी किया गया। इस प्रकार वनों के बारे में जानने की इच्छा के साथ-साथ इस तथ्य को स्वीकार किया गया कि वनों ने लोगों के दैनिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से एकत्र और वर्गीकृत किया गया जो दर्शाता है कि न केवल *जनपद* बल्कि इससे जुड़े *अरण्य* भी दैनिक जीवन के महत्त्वपूर्ण घटक थे।

हिंदुओं का आरंभ से ही प्रकृति से गहरा जुड़ाव था। जीवन के विभिन्न चरणों से संबंधित लगभग प्रत्येक अनुष्ठान और समारोह आग, लकड़ी और पानी के साथ अंतरंग संबंध को रेखांकित करते हैं। भारत का प्राचीन साहित्य, *वेदों* में नदियों, पहाड़ों और पृथ्वी की पवित्रता की बात कही गयी है। धर्म सूत्रों में सभी के प्रति दयालुता के भाव का गुणगान है। इसके अतिरिक्त, अन्य कई ऐसे ग्रंथ हैं जो प्रकृति के साथ उल्लास और सौहार्दपूर्ण संबंध की बात करते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में वर्णित ज्ञान हर रूप में विभिन्न मार्गों द्वारा जीवन की पवित्रता के करीब पहुंचता है। पशु और पौधों के विनाश को प्रलय का निमंत्रण माना गया। यह कहा गया कि त्रेता युग बीतने के बाद, लोग नदियों, खेतों, पहाड़ों, पेड़ों के झुंड और झाड़ियों सभी पर अधिकार जमा लेंगे। चौथा युग और भी बदतर होगा। पौधों, पेड़ों और पशुओं जैसी सभी जीवित संस्थाओं को नष्ट कर दिया जाएगा। धर्म का नाश होगा। धर्म का नाश ('ध्र' जिसका अर्थ है पोषण करना, पवित्रता, न्याय, कर्त्तव्य) तब होता था जब प्रकृति का पतन होता था (नारायणन, वसुधा, 2001)।

अधिकांश हिंदू परंपराओं में, पृथ्वी को पवित्र माना गया है। उसे *भू, भूमि, पृथ्वी, वसुधा, वसुंधरा, अवनी* के रूप में संबोधित किया जाता है। पृथ्वी की उपासना भगवान विष्णु के साथ उनकी पत्नी के रूप में की जाती हैं। *मनुस्मृति* में कहा गया है कि *''अशुद्ध वस्तुएं जैसे मल, मूत्र, थूक अथवा इन तत्वों से निहित वस्तुएं या विषय को जल में विसर्जित नहीं करना चाहिए''* (मनुस्मृति 4:56; नारायणन, 2001, द्वारा उद्धृत)।

प्रकृति केवल प्रकृति का मानवीकरण नहीं बल्कि ब्रह्मांडीय तत्व भी है। इसके पास दैवीय शक्ति है और *'पुरुष'* के साथ संजोग से सृजन होता है। प्रकृति के सभी घटक जैसे जल, पृथ्वी, अग्नि, आकाश/अंतरिक्ष और वायु पवित्र हैं।

भारतीय परंपरा में वृक्षों का स्थान पूजनीय है। ये वनस्पति जगत का हिस्सा है और मनुष्यों के बराबर है। प्राचीन ज्ञान परंपरा के अनुसार प्रत्येक वृक्ष में एक *वृक्ष देवता* होता है। इनको प्रातःकाल जल चढ़ाना चाहिए, इस तरह वृक्षों की निरंतर देखभाल सुनिश्चित की गयी। *नरसिंह पुराण* में वृक्ष को ही भगवान (ब्रह्मा) के रूप में मानवीकरण किया गया। *अथर्ववेद* ने *पीपल* के पेड़ में विभिन्न देवताओं का निवास माना। विभिन्न पेड़ और देवताओं के साथ उनका संबंध इस प्रकार से है :

अशोक वृक्ष	बुद्ध, इंद्र, विष्णु, अदिति
पीपल	विष्णु, लक्ष्मी, वन दुर्गा
तुलसी	विष्णु, कृष्ण, जगन्नाथ, लक्ष्मी
कदंब	कृष्ण
बेर	शिव, दुर्गा, सूर्य, लक्ष्मी
वट	ब्रह्मा, विष्णु, शिव, काल, कुबेर, कृष्ण

(मयंक कुमार, एमएचआई-08, खंड 5)

मत्स्य पुराण में एक संदर्भ है जहाँ पार्वती वृक्षों के रोपण के बारे में निर्देश देती हैं। एक बार पार्वती ने एक अशोक का पौधा लगाया और उसकी बहुत देखभाल की। देवता और दिव्य प्राणी उनके पास आते हैं और कहते हैं .

''हे देवी! ''लगभग सभी लोग बच्चे चाहते हैं। जब लोग अपने बच्चों और पोते-पोतियों को देखते हैं, तो उन्हें लगता है कि वे सफल हुए। पुत्रों की तरह वृक्ष लगाने और पालने से आप क्या हासिल करती हैं?'' पार्वती उत्तर देती हैं : *''जल की कमी वाले क्षेत्र में जो कुएँ खोदता है उसे स्वर्ग में तब तक स्थान मिलता है जब तक वहां पानी की बूंदें रहती हैं। पानी के एक बड़े जलाशय का मूल्य दस कुओं के बराबर है। एक बेटा दस जलाशयों के समान है और एक पेड़ दस बेटों के बराबर है (दस पुत्रः समो द्रुमा) यह मेरा मानदंड है और मैं इसकी सुरक्षा के लिए ब्रह्मांड की रक्षा करूंगी।''*

(मत्स्य पुराणम, अध्याय 154, 506-512, नारायण, 2001, से उद्धृत)

ऋग्वेद की सूक्ति के अनुसार, ''यदि हजारों और सैकड़ों साल तक आप फल और जीवन का आनंद लेना चाहते हैं, तो वृक्षों का व्यवस्थित रोपण कीजिए। ग्रंथों में बार-बार यह उल्लेख किया गया है कि वृक्ष और मुख्यतः विशेष फलों के वृक्ष पवित्र होते हैं और इनको नष्ट करने वालों को महा विपत्ति का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, रामायण में विपत्ति के समय राक्षसराज रावण बोलता है, ''... मैंने वैशाख के महीने में कोई अंजीर का वृक्ष नहीं काटा, फिर यह विपत्ति मेरे सामने क्यूँ आई''।

वृक्षों के गुणों का वर्णन करते हुए, *विष्णु पुराण* में कहा गया है कि जो पांच आम के वृक्ष लगाता है, वह नरक में नहीं जाता और *विष्णु धर्मोत्तरा* भी कहते हैं कि जो पेड़ लगाता है वह नरक में नहीं जाता। *धर्मसूत्रों* के साथ-साथ कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में वृक्ष की कटाई की निंदा की गई है। कौटिल्य वृक्षों, वनों और जंगलों को नष्ट करने वालों के लिए दंड के विभिन्न स्तरों का निर्धारण करते हैं। प्राकृतिक वनस्पतियों का विनाश कैसे अपराध माना जाता था यह निम्न वर्णित दंडों के विभिन्न स्तरों से पता चलता है : कौटिल्य का कहना है कि नगर के निकट के उद्यानों में फलों या फूलों के पौधों या छायादार वृक्षों के काटने पर, 6 *पण* का दंड लगाया जाएगा; एक ही वृक्ष की छोटी शाखाओं को काटने के लिए 12 *पण* और बड़ी शाखाओं को काटने के लिए 24 *पण* का दंड लगाए जाएंगे। उसी वृक्ष के

तने को काटने पर 48-96 *पण* के बीच जुर्माना लगाया जाएगा और वृक्ष गिराने पर 200-500 *पण* के बीच का दंड भुगतना होगा। उपरोक्त जुर्माना जो वृक्ष सीमाओं का रेखांकन करते हैं, या जिनकी पूजा की जाती है, दोगुना कर दिया जाएगा (कौटिल्य *अर्थशास्त्र*, नारायण, 2001, से उद्धृत)।

अर्थशास्त्र में ऐसे *अभयारण्य* या *अभयवन* को विकसित करने की आवश्यकता का वर्णन है जहां वृक्ष और पशु वध के भय से मुक्त रह सके। वहां एक वन *अधीक्षक* भी था जो जंगलों की देखभाल करता था और पशुओं के अवैध शिकार और हत्या के लिए दंड निर्धारित किया जाता था। अन्य पशुओं के साथ हाथियों, हिरणों, जंगली भैंसा, पक्षियों, मछलियों को फंसाने या मार डालने वालों के लिए मृत्युदंड निर्धारित किया गया था।

भारत में नदियों को भी पवित्र माना जाता था। ऐसा माना जाता है कि जो लोग नदियों में डुबकी लगाते हैं उनके *पाप* धुल जाते हैं। भारत की नदियों को पोषण और जीवन देने वाली माना जाता है। दक्षिण भारत में तमिलनाडु के मैदानी इलाकों में मानसून के बाद कावेरी नदी को गर्भवती माना जाता है और परंपरा के अनुसार स्थानीय लोग उसकी गर्भावस्था की भोजन-लालसा (मैक्काई) को संतुष्ट करने के लिए भोपन अर्पण करते हैं। एक मौखिक परंपरा और स्थानीय *स्थल पुराण* के अनुसार, 15 अक्तूबर - 14 नवंबर 'अय्प्पासी' के तमिल महीने के दौरान कावेरी नदी में स्नान करने से व्यक्ति के पाप दूर हो जाते हैं और मनुष्य को परम मुक्ति मिलती है।

अतीत में और आज भी मनुष्य का प्रकृति के साथ निकट संबंधों के उदाहरण हैं, जैसे नारियल के वृक्ष की पूजा की जाती है, नारियल के फल को शुभ माना जाता है; आम के पत्तों का उपयोग यज्ञ या अनुष्ठान के दौरान बंधनवार के रूप में किया जाता है; आम के पेड़ और इसकी लकड़ी का उपयोग यज्ञ में *समिधा* के रूप में किया जाता है; कमल और तुलसी के पौधे को धार्मिक रूप से शुद्ध माना जाता है।

सायन भट्टाचार्य के अनुसार, *मनुस्मृति* न्यायशास्त्र के ग्रंथ में, कुछ वर्गों में पारिस्थितिक जागरूकता को दर्शाया गया है (2014 : 37)।

1) सभी जीवित प्राणियों को मोटे तौर पर *चर* (चलायमान जीवित दुनिया) और *अचर* (अचल : पौधा साम्राज्य) के रूप में वर्णित किया गया है, इस प्रकार यह जैव विविधता की धारणा दर्शाता है।

2) अनैतिक गतिविधियों द्वारा पाँच स्थूल तत्वों के विनाश होने का अर्थ प्रदूषण हो सकता है।

3) स्वास्थ्य-प्रदता (*सौंचा*) के विरुद्ध किसी भी कार्य को संदूषण माना जा सकता है।

4) पौधों के भंडारण अंगों जैसे कंदील जड़ें, भूमिगत तने, पत्तेदार सब्ज़ियाँ, सुंदर फूल, स्वादिष्ट फल, काष्ठ, वृक्ष, फसल आदि को बहुमूल्य माना जाता था और इन पर चोट पहुंचाने के लिए विभिन्न दंड निर्धारित किये गये।

5) पशुओं के पालन और रक्षण, जैव विविधता के संरक्षण और शाकाहार को महत्त्व दिया गया। मनु के अनुसार, कृषि प्रक्रिया से पशुओं को चोट लगती है, विशेषतः मिट्टी में कीड़े और कीटाणु।

6) जैव विविधता संरक्षण के लिए, उन्होंने उल्लेख किया कि भोजन के लिए किसी भी प्रकार की मछलियों को नहीं मारा जाना चाहिए; एक खुर वाले पशुओं, गाँव के सूअर,

> एकांत में घूमने वाले पशु और अज्ञात पशुओं की रक्षा की जानी चाहिए, मांसाहारी पक्षी, ग्रामवास के पक्षी, जालपाद पक्षी, मछलियों को खाने वाले पक्षी, विचित्र चोंच वाले पक्षियों आदि को खाने के उद्देश्य से नहीं मारा जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि *खर* (गधा), *अश्व* (घोड़ा), *उष्ट्र* (ऊंट), *मृग* (हिरण), *इभा* (हाथी), *अजा* (बकरी), *अहि* (सांप), *अहिसा* (भैंस) की हत्या करना पाप है।

इस प्रकार, प्राचीन भारतीय परंपरा ने प्रकृति और पर्यावरण का ध्यान रखा। वास्तव में जीने का प्राचीन तरीका प्रकृति के साथ सामंजस्यपूर्ण रूप से रहने वाला है। यह पर्यावरण संतुलन भारत में अंग्रेज़ों के आने के साथ ही बधित हो गया था। हम पहले से कहीं अधिक ऐसे संबंधों की प्रासंगिकता महसूस करते हैं।

बोध प्रश्न 1

1) प्राचीन भारतीय ग्रंथों से कुछ उदाहरण दें, जो पर्यावरण के प्रति प्राचीन भारतीय सोच को दर्शाते हैं।

....

....

....

....

....

2) कुछ ऐसे उदाहरण दें, जिससे पता चलता है कि भारतीयों ने प्रकृति का देवत्वरोपण किया। इससे प्रकृति का संरक्षण कैसे हुआ?

....

....

....

....

....

18.5 प्राचीन भारत में विज्ञान और प्रौद्योगिकी

भारत ने आरंभिक काल से ही विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में काफ़ी उन्नति कर ली थी। इकाई के इस भाग में हम आरंभिक युग में भारतीय विज्ञान के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानेंगे।

18.5.1 प्राचीन भारत में जल विज्ञान

इतिहास में, जल-विज्ञान तकनीकों को राजनीतिक संस्थाओं और स्थानीय निवासियों द्वारा कृषि की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए आरंभ किया गया था। वे जल-संचयन की उन्नत तकनीकों का उपयोग करते थे और ये स्वदेशी तकनीक आज भी महत्त्वपूर्ण है।

इतिहास में जल संसाधनों की उपलब्धता ने निवास के मार्ग को प्रशस्त किया। जल की कमी वाले क्षेत्रों में विज्ञान और प्रौद्योगिकी की मदद से उपलब्ध अल्प संसाधनों का उचित उपयोग करने के सभी प्रयास किए गए। जल विज्ञान इंजीनियरिंग के क्षेत्र में प्रगति हुई।

हड़प्पा सभ्यता

सिंधु घाटी सभ्यता प्रथम सभ्य, शहरी संस्कृति है जो भारतीय उपमहाद्वीप में फली-फूली। इसकी विशेषताएँ उच्च स्तर की तकनीक को दर्शाती है जिसका हड़प्पा के निवासियों द्वारा इस्तेमाल किया गया था। मोहनजोदड़ों में पाया गया विशाल स्नानागार ऐसा ही एक उदाहरण है। यह एक तालाब है जिसके दोनों तरफ़ सीढ़ियाँ हैं जिनके माध्यम से इसके तल तक पहुंचा जा सकता है। स्नानागार की दीवारों और तल को जलरोधी बनाने के लिए चुना-गारा के मिश्रण में जिप्सम मिलाया गया था। स्नानागार को पूर्णतः जलरोधी बनाने के लिए दोहरी दीवार बनाई गयी और बीच की जगह को बिटुमिन के लेपन और मिट्टी से भरा गया। स्नानागार एक कुएँ से जुड़ा हुआ था जो पानी की आपूर्ति करता था। परिसर के खुले प्रांगण में स्थित एक कमरे में यह कुआँ था। तालाब में इस्तेमाल हुआ पानी पकी ईंटों की नाली द्वारा दक्षिण-पश्चिमी भाग में बहा दिया जाता था। विशाल स्नानागार की निर्माण प्रक्रिया और जलरोधक तकनीक हड़प्पा के उच्चस्तर जल-विज्ञान अभियांत्रिकी (हाइड्रोलिक, इंजीनियरिंग) कौशल की ओर संकेत करती है।

लोथल में एक बंदरगाह की खोज की गयी है। यह हड़प्पावासियों के अभियांत्रिकी (इंजीनियरिंग) कौशल का प्रमाण है। यह बंदरगाह पहला कृत्रिम जल-कुंड है जिसका निर्माण उच्च ज्वार के समय जहाजों को जलमार्ग से निकालने के लिए किया गया था। इसकी धारणा रोमन और फोनेसीयन द्वारा बनाए गए बंदरगाहों से उत्कृष्ट थी। इसके तटबंध की दीवारें पश्चिम में 212.4 मीटर, उत्तर की ओर 36.4 मीटर, पूर्व में 209.3 मीटर और दक्षिण में 34.7 मीटर थी। यह पंक्तिबद्ध संरचना जल के प्रवेश और निकासी के मार्ग का प्रमाण देती है। इस बंदरगाह की पूर्वी दीवार के दक्षिणी भाग की ओर एक 7 मीटर चौड़ी खाई है जो एक ढलाव मार्ग के रूप में कार्य करती है। इस मार्ग ने लोथल बंदरगाह को भोगावो नदी और फिर कैम्बे की खाड़ी से जोड़ दिया। पूरी संरचना इस तरह से बनाई गई है कि उच्च ज्वार-भाटा के समय यह मार्ग जल के प्राकृतिक प्रवाह को बढ़ाएगा और अतिरिक्त जल को ऊपर की ओर धकेल देगा। नौकाओं ने बंदरगाह में प्रवेश करने के लिए उच्च ज्वार का इस्तेमाल किया। जब ज्वार-भाटा उतरता तब नावो की वापसी की यात्रा होती। बंदरगाह की दक्षिणी दीवार में बनाए गए ढलाव मार्ग द्वारा अतिरिक्त जल बह जाता था। पानी के प्रवाह को नियंत्रित करने के लिए ढलाव मार्ग पर एक लकड़ी के फाटक का इस्तेमाल किया गया था। बंदरगाह की पश्चिमी दीवार के साथ 260 मीटर लंबा जहाज-घाट था, इस घाट से वस्तुओं को बगल के गोदाम में ले जाया जा सकता था। गोदाम का क्षेत्रफल 1,930 वर्ग मीटर था, जो मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के अन्न भंडार से बड़ा था। यह संरचना चार मीटर ऊँचे चबूतरे पर बनाई गयी थी, जिस पर इंटों के चौसट खंड थे और प्रत्येक 3.6 मीटर के वर्गाकार खंड की उंचाई एक मीटर थी। एक मीटर चौड़े मार्ग द्वारा इन खंडों को अलग-अलग किया गया था ताकि वायु-संचार और सामानों की आवाजाही में आसानी हो। खंडों के शीर्ष पर लकड़ी की अधिरचना बनाई गई थी।

इसी प्रकार, धोलावीरा में, कच्छ के रण में, बारिश के जल को एकत्र करने के लिए चट्टानों को काटकर जलाशयों का निर्माण किया गया था। धोलावीरा एक ऐसे ही क्षेत्र में स्थित है जहाँ पानी की भीषण कमी है। हड़प्पा वासियों ने वर्षा का जल जो धोलावीरा के निकट की दो नदियों से आता था, को 16 जलाशयों में एकत्र करने के लिए बहुत ही कुशल तरीकों का उपयोग किया। मनहर और मंदसर नामक दो मौसमी नदियों का उपयोग जलग्रहण क्षेत्रों से वर्षा का जल एकत्र करने के लिए किया जाता था। जल को रोकने के लिए नदियों में उपयुक्त स्थानों पर पत्थर की दीवारे बनाई गई। बस्ती के भीतरी और बाहरी दीवारों के बीच चट्टानी ढलान वाले क्षेत्रों में खुदाई कर, प्रवेश मार्गों की मदद से जलाशयों तक

मानसून जल प्रवाह को पहुंचाया गया। इन जलाशयों पर बांध, पुल बनाकर एक-दूसरे से अलग कर दिया गया था, इससे बस्ती के अलग-अलग हिस्सों तक जल पहुंचाना आसान हो गया। इसके अतिरिक्त, नगर में जल संग्रहण के लिए एक-दूसरे को काटती हुई नालियों का निर्माण किया गया। ये नाले पत्थर और ईंट के बने होते थे और इसका उपयोग गंदे पानी के लिए नहीं बल्कि बारिश के पानी को इक्ट्ठा करने के लिए किया जाता था। इसी तरह, धोलावीरा में घर की नालियों को शोष-गर्त से जोड़ा गया। इस प्रकार विवेकपूर्ण तरीकों और प्रौद्योगिकी की मदद से वर्षा के जल-संचयन के हर संभव प्रयास किये गए।

कालीबंगन, सुरकोटडा, चंहुदरों के अन्य हड़प्पा स्थलों पर किये गये जल प्रबंधन दैनिक जीवन में वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग को दर्शाता है। सार्वजनिक और निजी दोनों ही प्रकार के कुएं पाए गए हैं। कुशलता से निर्मित स्नानगृहों से निकलने वाली नालियों को सड़कों की नालियों से जोड़ा गया था, सफाई में आसानी के लिए इनमें नियमित अंतराल पर मोरीद्वार (मेनहोल) बनाये गये थे। नालियों का निर्माण भट्टे में पकी हुई ईंटों से हुआ था जो पट्टियों से ढकी हुई थी। इससे पता चलता है कि हड़प्पा स्थलों पर जल निकास और मल प्रवाह प्रणाली सबसे विकसित किस्म की थी और यह शहरी, उन्नत सभ्यता की एक विशेषता बन गई।

ऐतिहासिक काल

विभिन्न राजवंशों को जल संचयन उद्देश्य हेतु सिंचाई की नहरों, जलाशयों, तटबंधों और कुओं के निर्माण के लिए जाना जाता है। मौर्य शासकों ने न केवल सड़कों के किनारे सार्वजनिक उपयोग के लिए कुएँ खोदे, बल्कि नए बसे गाँवों के लिए सिंचाई के माध्यमों के निर्माण को भी सूचीबद्ध किया। कौटिल्य का *अर्थशास्त्र* सिंचाई तकनीकों, वर्षा व्यवस्था और जल संचयन विधियों के बारे में जानकारी देने के लिए प्रसिद्ध है।

पहली शताब्दी बी.सी.ई. में प्रयागराज के पास श्रृंगवेरपुरा में निर्मित जलाशय, हाइड्रोलिक इंजीनियरिंग का एक उल्लेखनीय उदाहरण है। यह 250 मीटर से अधिक लंबा एक विशाल जलाशय है। जिसका निर्माण गंगा नदी पर बांध बनाकर किया गया है; मानसून अवधि के दौरान जो समीपवर्ती धारा (नाले) में गिरता है, जहाँ से 11 मीटर चौड़ी और 5 मीटर गहरी नहर इस जलाशय में जल बहा कर ले जाती है। लेकिन पहले पानी को एक निःसादन में एकत्र कर लिया जाता है। इस पानी का उपयोग अनुष्ठान और स्नान के प्रयोजनों के लिए किया जाता है। ज़मीन से पानी का अवशोषण करने वाले भूमिगत कुओं की वजह से जलाशय कभी सूखता नहीं था। यहाँ हम सुदर्शन झील नामक एक और प्रभावशाली जलाशय का उल्लेख कर सकते हैं। इसका निर्माण तीसरी शताब्दी बी.सी.ई. गुजरात के गिरनार क्षेत्र में हुआ था। सम्राट चंद्रगुप्त मौर्य के शासनकाल के दौरान पुष्यगुप्त नामक एक अधिकारी द्वारा पहली बार खुदाई की गई थी। अशोक के शासनकाल में यवनराजा तुशस्य ने इसमें पूरक जलग्रीवा (नालियां) जोड़ी। 150 सी.ई. के जूनागढ़ गिरनार अभिलेख में वर्णित है कि चार शताब्दियों बाद, उज्जैन के शक राजा महाक्षत्रप रुद्रदामन ने झील की मरम्मत करवाई। 455 सी.ई. में स्कंदगुप्त के शासनकाल के एक शिलालेख से प्रमाण मिलते हैं कि यह झील बाद के समय में भी मौजूद रही। स्कंदगुप्त के प्रांतीय गवर्नर पर्णदत्त के बेटे, स्थानीय शहर के गवर्नर चक्रपलित ने तटबंध टूटने पर झील की मरम्मत करवाई। इस समय झील के तटबंध का आधार 100 फुट मोटा था। 9वीं शताब्दी सी.ई. में अंततः झील नष्ट होती गयी और इसकी मरम्मत नहीं करवाई गई। झील के जल को प्रतिरोपित मोड़ और अन्य माध्यमों द्वारा छोटे मार्गों में प्रवाहित होने दिया जाता था।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

18.5.2 गणित

भारत में प्राचीन लोगों ने विज्ञान और गणित के क्षेत्र में अच्छा नियंत्रण स्थापित कर लिया था। वैदिक लोगों के बलिप्रथा में रुचि के परिणामस्वरूप दो विषय विकसित हुए, ज्यामिति और खगोल विज्ञान। बलि दिए जाने वाली वेदी का आकार और आकृति निश्चित होनी चाहिए थी। इसी से ज्यामिति विज्ञान उत्पन्न हुआ। बलिदान के लिए उचित समय तय करने की आवश्यकता ने खगोल विज्ञान के अध्ययन को विकसित किया। वैदिक साहित्य में *'गणिता'* शब्द मौजूद है जिसका अर्थ है गणना का विज्ञान। *छन्दोग्य उपनिषद्* में विज्ञान की अन्य शाखाओं के साथ संख्याओं के विज्ञान का उल्लेख है। इस समय गणित में खगोल विज्ञान, अंकगणित और बीजगणित शामिल थे, लेकिन ज्यामिति नहीं। ज्यामिति उस समय विज्ञान के एक अलग समूह से संबंधित थी जिसे *'कल्प'* नाम से जाना जाता था। ज्यामिति पर छह छोटे ग्रंथ हैं जो वेदों की छह शाखाओं से संबंधित हैं। उत्तर वैदिक कालीन भारत में गणित का बड़ा हिस्सा खगोल विज्ञान के सहायक के रूप में विकसित हुआ। इस वर्ग के खगोलीय कार्यों को *'सिद्धांत'* कहा जाता है। सामान्य युग के कुछ ही पहले और बाद की शताब्दियों में खगोलीय विचारों और घटनाओं को उचित प्रकार से व्यक्त करने, वर्णन करने और लेखा-जोखा रखने के लिए गणित का विकास हुआ था।

जैन धर्म के आरंभ में पुजारियों ने गणित के विकास को प्रोत्साहित किया। उन्होंने *अनुयोग* (धार्मिक साहित्य) की चार शाखाओं में से एक शाखा को *गणितानुयोग* (गणितीय सिद्धांत), *संख्यान* (गण्ना) और *ज्योतिष* (खगोल विज्ञान) के ज्ञान को समर्पित किया। एक जैन पुजारी को इन तीनों का ज्ञान होना चाहिए था। महावीर के गणितसार-संग्रह (850 सी.ई.) और श्रीपति के *गणित तिलक* (999 सी.ई.) में वर्णित गणितज्ञय विचारों की छाप बहुत समय पहले *स्थागांग-सूत्र* (1 शताब्दी बी.सी.ई.) में मिलती है। इसमें *परिक्रमा* (मौलिक संचालन), *व्यवहार* (दृढ़ संकल्प), *रज्जु* (ज्यामिति), *कालसवार्ण* (भिन्नांक), *यवत-तवत* (रेखीय समीकरण), *वर्ग* (द्विघात समीकरण), *घन* (घन समीकरण), *वर्गावर्ग* (द्विवर्गात्मक समीकरण) और *विकल्प* (क्रमपरिवर्तन और संयोजन) को सूचीबद्ध किया गया है। इस समय गणित में तीन शाखाएँ सम्मिलित थी – अंकगणित, बीजगणित और ज्यामिति (सत्पथी, बी.बी., दिनांक नहीं)।

अंकगणित के क्षेत्र में, भारत में शून्य प्रणाली विकसित हुई और फिर दुनिया के अन्य हिस्सों में फैल गयी। हिंदू शब्द 'शून्य' का अर्थ है – रिक्त, जो अरबी भाषा में *'सिफर'* के रूप में आया। शून्य के साथ दशमलव प्रणाली के अस्तित्व में होने के प्रमाण की पुष्टि करने के साक्ष्य भी उपलब्ध है। भोजदेव शासनकाल के ग्वालियर शिलालेख में छंदों को 1.26 तक दशमलव आंकड़े में दर्शाया गया है। इतना ही नहीं इस अभिलेख में शून्य के लिए एक गोलाकार प्रतीक भी दिखाई देता है।

इस प्रकार भारतीय गणित बहुत विकसित और जटिल था जिसमें संख्या सिद्धांत से लेकर दूसरे क्रम के बीजगणितीय समीकरण और सीमांत मान की अवधारणा शामिल थी।

18.5.3 खगोल विज्ञान

यद्यपि खगोल विज्ञान की उत्पत्ति वैदिक काल में हुई, किंतु एक अलग विज्ञान के रूप में *ब्राह्मणों* में इसका विकास हुआ। इसे *नक्षत्र विद्या* (सितारों का विज्ञान) कहा जाने लगा। एक खगोलशास्त्री को *नक्षत्र-दरिया* (नक्षत्र निरीक्षक) या *गणक* (कैलकुलेटर) कहा जाता था।

ऋग्वेद के अनुसार, ब्रह्मांड में पृथ्वी, अंतरिक्ष (आकाश, जिसका शाब्दिक अर्थ है सितारों के नीचे का क्षेत्र) और दिव या द्यायुस (स्वर्ग) शामिल हैं। ब्रह्मांड को अनंत माना गया।

शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पृथ्वी को परिमण्डल (ग्लोब या गोलाकार) के रूप में वर्णित किया गया है। *ऋग्वेद* में कहा गया है कि अक्षीय घूर्णन और वार्षिक परिक्रमा सूर्य के कारण होती है। सूर्य केवल एक है जिसके कारण दिन और रात, भौर (गोधूलि), महीने, वर्ष और मौसम होते हैं। इसमें सात किरणें हैं जो मुख्यतः सूर्य की किरणों के सात रंग हैं। *ऋग्वेद* में भूमध्य रेखा के साथ सूर्यपथ के झुकाव और पृथ्वी की धुरी का उल्लेख किया है।

सूर्य की प्रत्यक्ष वार्षिक श्रृंखला को दो भागों में बांटा गया था, उत्तरायण, जब सूर्य की गति उत्तर की ओर होती है तथा दक्षिणायन जब यह दक्षिण की ओर जाता है। सूर्य की राशि चक्र के विभिन्न भागों को अलग-अलग नामों से पुकारा गया, इस प्रकार बारह आदित्यों के सिद्धांत की उत्पत्ति हुई। *ऋग्वेद* के अनुसार चन्द्रमा सूर्य के प्रकाश से चमकता है।

हालांकि भारतीय खगोल विज्ञान के वैज्ञानिक पहलू का काल-अंकन टॉलेमी के समय की तुलना में बहुत बाद में हुआ, किंतु इसके तरीके और स्थिरांक सभी वास्तविक थे। भारतीय खगोल विज्ञान सटीक और व्यवहारिक दोनों था। उन्होंने पहली ज्या (साइन) और कोज्या (कोसाइन), टेबल और आरंभिक त्रिकोणमिति बनाई। भारतीय खगोलीय ग्रंथों में आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ निहित हैं, आर्यभट्ट की व्यापक खगोलीय गणना से लेकर वराहमिहिर के खगोलीय विवरण के निर्धारण और विभिन्न अवधारणाओं के स्पष्टीकरण तक। ग्रहण और ग्रहों के संयोजन : मुहूर्त, तिथि, कैलेंडर, ग्रहण और ग्रह-संयोजन भारतीय खगोल विज्ञान और पंचांग-निर्माण का महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे।

18.5.4 औषधि

भारतीय चिकित्सा पद्धति की पारंपरिक प्रणाली मन और शरीर दोनों से संबंधित है। यह *'आयुर्वेद'* शब्द से ही स्पष्ट है। यह दो शब्दों से मिलकर बना है – *'द्युस'* और *'वेद'*। *'द्युस'* का अर्थ है जीवन और बाद में ज्ञान-विज्ञान। *चरक संहिता* के अनुसार, *द्युस* में सुख, दुख, हित और अहित सम्मिलित हैं। शारीरिक और मानसिक रोग से मुक्त, जोश, शक्ति और ऊर्जा से भरा जीवन सुखी जीवन है। इसके विपरीत दुखी जीवन कष्टों और बीमारी से भरा होता है।

आयुर्वेद पर्यावरण के साथ पारस्परिक क्रिया द्वारा किसी व्यक्ति के मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित करता है। इसकी दो शाखाएँ हैं – *शल्यक्रिया* (सर्जरी) और *औषधि* । आयुर्वेद के विशाल ज्ञान का काल निर्धारण आर्यों से पूर्व और आर्य युग के आधार पर किया जा सकता है। ऐसा माना जाता है कि इसके अनुमान, दर्शन, तर्क और बीमारियों के व्याधिनिदान को *न्याय-वैसेशिका* और *सांख्य दर्शन* शाखाओं से लिया गया था। वेदों के समान *आयुर्वेद* को उच्च स्थान प्राप्त है। इसे *अथर्ववेद* का उपांग और *ऋग्वेद* से जुड़ा *उपवेद* कहा जाता है। *अथर्ववेद* और *आयुर्वेद* के चिकित्सा पद्धति के बीच घनिष्ठ समानता है। *महाभारत* में वर्णित है कि *आयुर्वेद* की रचना कृष्णत्रेय ने की थी।

आयुर्वेद के इतिहास को निम्न में विभाजित किया जा सकता है :

1) प्रारंभिक अवधि (देवकाल)

2) संकलन की अवधि (ऋषिकाल या संहिताकाल)

3) सार संग्रह की अवधि (संग्रहकाल)

4) पतन की अवधि

आयुर्वेद के प्रारंभिक ग्रंथ लुप्त हो गए हैं। इसमें एक लाख सूक्ति (मोक) से बनी *ब्रह्मा-संहिता* शामिल थी। ये सभी ग्रंथ लुप्त हो गए हैं। इनमें प्रमुख थे– *ब्रह्म-संहिता, प्रजापति-संहिता, अल्वी-संहिता* और *बलाभित-संहिता* / 500 बी.सी.ई. से 500 सी.ई. के दौरान *आयुर्वेद* से संबंधित विभिन्न कार्यों का संकलन प्रवर्तक लेखकों द्वारा किया गया। आयुर्वेद के आठ भागों में *कायचिकित्सा* (चिकित्साशास्त्र), *शल्य-तंत्र* (प्रमुख शल्य चिकित्सा), *शालक्य-तंत्र* (लघु शल्य चिकित्सा), *भूतविद्या* (प्रेतशास्त्र), *कौमारभृत्य-तंत्र* (बाल रोग), *अगद-तंत्र* (विष विज्ञान), *रसायन-तंत्र* (जराचिकित्सा) और *वाजीकरण-तंत्र* (पुरुषत्व) सम्मिलित थे।

यूनीनी (ग्रीक) चिकित्सा पद्धति पर *आयुर्वेद* का गहरा प्रभाव था और इसकी अवधारणा हिप्पोक्रेटिक पुस्तिका से मिलती है। मेगस्थनीज़ (चौथी शताब्दी बी.सी.ई.) द्वारा हाथियों के नेत्र रोगों के उपचार का वर्णन पलकप्या के *हस्त्याआयुर्वेदा* के विचारों पर आधारित पाया गया है। इसके विपरीत, यूनानी (ग्रीक) चिकित्सा से जुड़ी कुछ अवधारणाओं को *आयुर्वेद* में सम्मिलित किया गया है। *आयुर्वेदिक* ग्रंथों का अरबी में और अरबी से फारसी में अनुवाद किया गया। *सुश्रुत संहिता* का अनुवाद एक प्रवासी भारतीय चिकित्सक द्वारा किया गया था।

कुछ प्रसिद्ध *आयुर्वेदिक* ग्रंथों का अरबी में और अरबी से फारसी में अनुवाद किया गया था। आयुर्वेदिक सिद्धांत ईरान, मध्य एशिया, तिब्बत, इंडो-चीन, इंडोनेशिया और कंबोडिया तक फैले।

आयुर्वेद स्वास्थ्य और कल्याण के लिए एक अनोखे और समग्र दृष्टिकोण का विस्तार करता है। इसमें स्वास्थ्य और बीमारी के लिए आत्म अनुशासन, व्यायाम और पौधों पर आधारित चिकित्सा प्रणाली शामिल है। इसके सिद्धांत विश्लेषणात्मक, तर्कसंगत और व्यावहारिक हैं। इसने आधुनिक चिकित्सा को भी प्रभावित क्रिया है, मुख्यतः प्लास्टिक सर्जरी के क्षेत्र में।

18.5.5 वास्तुकला

हड़प्पा सभ्यता भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे प्रारंभिक, सबसे विकसित और नगरीय सभ्यता थी। इसके नगर जैसे हड़प्पा, मोहनजोदड़ों, लोथल, कालीबंगन, धोलावीरा, राखीगढ़ी एक विस्तृत योजना और उत्कृष्ट सड़क और गृह निर्माण दर्शाते हैं। वे प्राचीन भारतीयों की उच्च तकनीकी कौशल के विकास के गवाह हैं। नगर-निर्माण के संदर्भ में, मोहनजोदड़ों की बड़ी इमारतें 73मी. × 34 मी. से भी बड़ी थीं। सड़के कुशलता से बनाई गई थीं तथा उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम की ओर जाते हुए एक-दूसरे को शतरंज के समान समकोण पर काटती थी। सड़कों की चौड़ाई 10 मीटर से लेकर 5.48 मीटर थी और कुछ सड़कों को पक्का किया गया था

मकान लंबे-चौड़े और अच्छी तरह से बनाए गए थे। वे पकी ईंटों के बने थे जो 1:2:3 या 1:2:4 के समान अनुपात में थी। कई घरों में एक से अधिक मंजिल थी, ऐसा लगता था कि जैसे उन्होंने भार वितरण के सिद्धांतों में विशेषज्ञता हासिल कर ली होगी। एक सामान्य घर में एक मुख्य आंगन के अलावा एक कमरा जिसमें एक कुआं, पक्का बाथरूम और कई नालियां थी। फर्श के नीचे एक नाली बनाई गयी थी जो गंदे पानी को सड़क की मुख्य नाली में बहा देती थी। इसी तरह से छत से गंदे पानी की निकासी के लिए दीवारों के साथ लंबवत् रूप से ऊर्ध्वाधर नालियां बनाई गयी थी। घिरनी द्वारा कुओं से पानी खींचने के लिए एक सुसज्जित प्रणाली भी थी।

कालीबंगन में तांबे की कुल्हाड़ियाँ मिली हैं, जो संकेत देती हैं कि 2450 बी.सी.ई. में तांबा धातुशोधन की शुरुआत हो चुकी थी। जल निकासी प्रणाली, सड़कें, अन्न भंडार, मकान, वज़न और माप, सील सभी वस्तु उत्कृष्ट कोटि का कौशल दर्शाते हैं। मोहनजोदड़ों और लोथल में पाए जाने वाले तोल के बाट चर्ट पत्थर को काट के बनाए गए थे। मोहनजोदड़ो में पाए गये सीप से बने क्रमवर्धी माप, हड़प्पा से मिली कांसे की छड़ और लोथल का हाथीदांत का काम हड़प्पाई लोगों की व्यावहारिक ज्यामिति और भूमि सर्वेक्षण के ज्ञान को दर्शाते हैं। माप के क्रमिक विभाजनों के बीच का अंतर क्रमशः 6.70 मिमी., 9.34 मिमी. और 1.70 मिमी. है। टेराकोटा का भूलंब (साहुल) और लोथल में 45º, 90º और 180º के कोणों को मापने के लिए सीप से बना एक उपकरण भी पाया गया है।

बाद के काल में बनी धार्मिक इमारतें जैसे स्तूप और चैत्य गृह का निर्माण बौद्धों के तकनीकी कौशल को दर्शाता है। चट्टान को काटकर बनाए गए चैत्य या विहार का डिज़ाइन पहले किसी श्रेष्ठ शिल्पकार या वास्तुकार द्वारा तैयार किया जाता था। एक उपयुक्त स्थान चुनने के लिए उसे चट्टान के प्रकार और उसके दोषमुक्त होने, एक उचित शिरानिक्षेप का होना जहां से गुफा की खुदाई शुरू की जा सके, स्नान और पीने के पानी के लिए झरने या नदी से निकटता जैसे कारकों को ध्यान में रखना पड़ता था। विस्तृत योजनाएँ बनाने के लिए और निर्माण कार्य आगे बढ़ाने के लिए चट्टानों की सही स्थिति और आकार को जानना आवश्यक था।

18.5.6 धातुशोधन में प्रगति

धातुशोधन परंपरा भारत में 7000 वर्ष प्राचीन है। इसमें प्रस्तर कर्म, कृषि, पशु-पालन, कुम्हकारी, धातुशोधन, वस्त्र निर्माण, मनके-निर्माण, लकड़ी पर नक्काशी, गाड़ी-निर्माण, नौका-निर्माण एवं नौचालन का समृद्ध इतिहास है।

ताम्र के प्रथम साक्ष्य तांबे के मनके के रूप में 6000 बी.सी.ई. में मेहरगढ़ से प्राप्त हुए। हालांकि यह किसी अयस्क से प्रगलित नहीं बल्कि कच्चे-तांबे के रूप में था। 1500 वर्ष पश्चात् बस्तियों ने तांबे के प्रगलन (धातु को पिघला कर शोधन करना) का परीक्षण करना आरंभ किया, इसमें कुछ शताब्दियों बाद हड़प्पा काल में और अधिक प्रगति हुई। हड़प्पाई लोग अरावली की पहाड़ियों, बलूचिस्तान और अन्य कई स्थानों से तांबे के अयस्क प्राप्त करते थे। शीघ्र ही उन्होंने तांबे में रांगा (टिन) धातु मिलाकर कांस्य धातु का आविष्कार कर लिया जो तांबे से अधिक ठोस और ढालने में आसान थी। उन्होंने अयस्क की अशुद्धियों में निकल, गिलट (निकल), संखिया (आर्सेनिक), सीसा (लेड) की भी खोज की जो कांसे से भी अधिक सख़्त थी जिनका उपयोग पत्थरों को तराशने के लिए किया गया। तांबे और कांसे को ढालने की प्रक्रिया में कई तकनीक शामिल थी जैसे ढलाई, नतोदरता, उत्थापन, शीतन-प्रक्रिया, धातु पर परत चढ़ाना (अनिलिंग), दरारों को भरना (रिवेटिंग), लपेटना और जोड़ना। हड़प्पाई बरछे का सिरा, बाण का सिरा, कुठार, छेनी, हसियां, ब्लेड्स (चाकू और रेज़र के लिए), सुई, हुक और बर्तन जैसे जार, पात्र, पैन (कड़ाही, तवा), इनके अतिरिक्त प्रसाधन के सामान जैसे कांसे के दर्पण जो आकार में हल्के अंडाकार होते थे, उभरा हुआ अग्रभाग और एक तरफ़ से अत्यधिक पोलिश की गई वस्तुओं का उत्पादन करते थे। हड़प्पा के शिल्पकारों ने आरा (true saw) की भी खोज कर ली, जिसके दांत और ब्लेड का संलग्न भाग वैकल्पिक तौर पर एक साथ लगे हुए थे, इस प्रकार के आरे की जानकारी रोमन युग तक अन्य किसी भी स्थान पर नहीं थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने हमें प्रसिद्ध 'डांसिंग गर्ल' दी, और भेडा, हिरण, बैल आदि अन्य जंतुओं की कृतियाँ भी इसमें सम्मिलित है जो भ्रष्ट मोम प्रक्रम द्वारा बनाई गयी थीं।

मोहनजोदड़ों के हड़प्पा क्षेत्र से सोने और चांदी के आभूषण प्राप्त हुए हैं (लगभग 3000 बी.सी.ई.)। सोने (स्वर्ण) का निर्माण थान संचय से जलोढ़ बालू द्वारा किया जाता था। कर्नाटक के मस्की की प्राचीन खादानें (लगभग सहस्त्राब्दी बी.सी.ई.) विश्व में सबसे अधिक गहरी है। हेरोडोटस भारत में सोने की खुदाई करने वाली चींटियों की बात करता है। इसका उल्लेख मारमोट की गतिविधि से किया जा सकता है। अफ़ग़ानिस्तान में पाया जाने वाला यह एक प्रकार का क्रतक प्राणी है, जो नदी की बालू को खोद देता था जिससे बाद में निवासियों द्वारा सोना निथार लिया जाता है। पृष्ठ-तनाव का उपयोग पिघले हुए सोने को गोलाई देने के लिए किया जाता था।

उत्तर वैदिक काल के साथ उत्तर भारत में लोहे का उपयोग आरंभ हुआ। इससे पहले ऋग्वेद में 'अयस' शब्द का उल्लेख हुआ है जिसका अर्थ तांबा या कांसा है। बाद की अवधि में कृष्णअयस, कालअयस, श्यामअयस (काली धातु) का उपयोग संभवतः लोहे के लिए हुआ है। भारत में तांबा-कांस्य और लौह धातु विज्ञान का विकास स्वतंत्र रूप से हुआ था। भारत में लोहे की दो उन्नत किस्मों का निर्माण किया गया था। इससे पता चलता है कि आविष्कारों के क्षेत्र में भारत अन्य देशों से आगे था। वुट्ज़ स्टील (इस्पात) दक्षिण भारत में 300 बी.सी.ई. में शुरू हुआ। नियंत्रित परिस्थितियों में इसे लोहे से कार्बनीकृत किया गया था। इसे दक्कन से सीरिया में निर्यात किया जाता था जहाँ इससे दमिश्क तलवारों का निर्माण किया गया जो ठोस और तेज़धार के लिए प्रसिद्ध थी। भारतीय इस्पात को ''पूरब की अद्भुत सामग्री'' कहा जाता था। रोमन इतिहासकार, क्विंटियस कर्टियस के अनुसार, महान अलेक्जेंडर को तक्षशिला के पोरस (326 बी.सी.ई.) ने ढाई टन 'वुट्ज़ स्टील' उपहार में दिया। 'वुट्ज स्टील' सोने या जवाहरात से अधिक कीमती था। वुट्ज़ स्टील में मुख्य रूप से कार्बन का उच्च अनुपात (1.0 - 1.9:) है, इस प्रकार के उच्च कार्बन मिश्र धातु का निर्माण क्रूसिबल प्रक्रम द्वारा होता है।

भारत जस्ता परिष्करण में महारत हासिल करने वाला पहला देश था। जस्ता का क्वथनांक कम होता है इसलिए इसके अयस्क को गलाते समय ही यह वाष्पीकृत हो जाता है, इस प्रकार यह गलाने के लिए सबसे कठिन धातु है। यह एक चमकदार सफेद धातु है जो तांबे के साथ मिलकर बहुमूल्य उत्कृष्ट पीतल का निर्माण करता है। छठी या पांचवी शताब्दी बी.सी.ई. राजस्थान के जावर की खानों में जस्ता उत्पादन के पुरातात्विक साक्ष्य मिले हैं। प्राचीन भारतीयों ने परिष्कृत आसवन तकनीक की मदद से जस्ता गलाने की कला में महारत हासिल की, जिसमें निचले पात्र में वाष्प को एकत्र और संघनित किया जाता था। प्राचीन ग्रंथों में भारत की प्राचीन धातुकर्म परंपरा के कई उदाहरण है। कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में खानों के विभाग का उल्लेख आया है। खानों के निदेशक को विभिन्न प्रकार के धातु अयस्कों, धातुओं के परीक्षण और शुद्धिकरण, मिश्र धातु बनाने, पृथ्वी में धातु की उपस्थिति से परिचित होने, रत्नों को रंगने की कला आदि के बारे में गहन ज्ञान होना चाहिए। उसे धातुमल, क्रूसिबल, कोयला और राख की उपस्थिति से पुरानी खादान और रंग, भारीपन, मज़बूत गंध और स्वाद के साथ एक नई खादान का निरीक्षण करने में सक्षम होना चाहिए।

उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि यूरोप की औद्योगिक क्रांति से बहुत पहले ही भारत ने विभिन्न तत्वों को गलाने की कला, धातु प्रौद्योगिकी और इसके विज्ञान के क्षेत्र में विशेषज्ञता हासिल कर ली थी। यह कई नये आविष्कारों में भी आगे था।

बोध प्रश्न 2

1) प्राचीन भारत में गणित का विकास कैसे हुआ, विवेचन कीजिए।

2) दिये गए वाक्यों में सही या गलत की पहचान करें –

   क) प्राचीन भारत में पर्यावरण जागरूकता पहली प्रथम शताब्दी सी.ई. में शुरु हुई थी। ( )

   ख) भारतीय दर्शन प्रकृति के रक्षण और संरक्षण की पर्यावरणीय नैतिकता को प्रोत्साहित करता है। ( )

   ग) अशोक ने अपने अभिलेखों में पशुओं की हत्या पर पाबंदी का जिक्र किया है। ( )

   घ) प्राचीन भारत में पेड़ों की अंधाधुंध कटाई की जाती थी। ( )

   ङ) भारतीयों ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के बारे में सब कुछ युनानियों (ग्रीक) से सीखा। ( )

   च) भारतीय गणित में पाइथोगोरियन त्रिक को पश्चिम से उधार लिया गया था। ( )

   छ) भारतीय खगोल विज्ञान दोषपूर्ण और गलत था। ( )

   ज) महुरत, तिथि, कैलेंडर, ग्रहण और ग्रह संयोजन भारतीय खगोल विज्ञान और पंचांग-निर्माण का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा थे। ( )

18.6 सारांश

पर्यावरण पर उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट है कि भारतीय प्राचीन काल से पर्यावरण के संरक्षण और उसकी स्थिरता के बारे में बहुत सजग थे। भारत के प्राचीन साहित्य में *वेद, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत* और *पुराण* शामिल हैं, ये उन उदाहरणों से परिपूर्ण हैं जो पर्यावरण के लिए सजग वातावरण को रेखांकित करते हैं। प्राचीन भारतीय ग्रंथ जैसे *अर्थशास्त्र, शतपथ ब्राह्मण, वेद, मनुस्मृति, बृहत्-संहिता, रामायण, महाभारत, राजतरंगिणी* आदि वन पारिस्थितिकी और संरक्षण की अवधारणाओं के संपोषणीय व्यवहार को दर्शाते हैं।

विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में, प्राचीन भारतीयों ने कई कलाओं में निपुणता हासिल की थी। हड़प्पा वासियों ने मोहनजोदड़ो, हड़प्पा जैसे विशाल शहरों का निर्माण किया और उपमहाद्वीप में पहली नगरीय सभ्यता की नींव रखी। उनके घर, जल निकास प्रणाली, सड़कें, अन्न भंडार, बंदरगाह, पानी के तालाब आदि उनके इंजीनियरिंग कौशल का प्रमाण हैं। आर्यभट्ट के लौह और जस्ता प्रगलन में अभूतपूर्व योगदान के कारण अनेक लोग उनकी बुद्धिमत्ता से प्रभावित होते रहे। अतीत में गणित, खगोल विज्ञान, भूगोल, चिकित्सा जैसे विभिन्न क्षेत्र फल-फूल रहे थे जिसमें प्राचीन भारतीयों ने बहुत योगदान दिया है। वास्तव में, यूनानियों (ग्रीक) के साथ प्राचीन भारतीय सभ्यता एकमात्र ऐसी सभ्यताएँ थीं जिसने विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर उच्च कौशल प्राप्त किया।

18.7 शब्दावली

आयुर्वेद : शाब्दिक रूप से ''दीर्घायु के लिए ज्ञान''।

हड़प्पा सभ्यता : हड़प्पा सभ्यता को सिंधु घाटी सभ्यता भी कहा जाता

है। 2600-1800 बी.सी.ई. में यह सभ्यता सिंधु.गंगा के मैदानी क्षेत्र में विकसित हुई।

धातुशोधन : यह धातुओं को उनके अयस्कों से निकालने की कला और संशोधित करने का विज्ञान है।

आसवन : एक ऐसी प्रक्रिया जिसमें विभिन्न क्वथनांक वाले दो या दो से अधिक तत्वों के मिश्रण को एक-दूसरे से अलग किया जा सकता है।

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) विवरण के लिए 18.2 और 18.3 देखें।
2) विवरण के लिए 18.4 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) विवरण के लिए 18.5.2 देखें।
2) सही या गलत
   - क) गलत
   - ख) सही
   - ग) सही
   - घ) गलत
   - ङ) गलत
   - च) गलत
   - छ) गलत
   - ज) सही

18.9 संदर्भ ग्रंथ

भट्टाचार्य, सायन (2014). फारेस्ट एंड बायोडायवर्सिटी इन एशियेंट इंडियन कल्चर : ए रिव्यू बेस्ड ऑन ओल्ड टेक्स्ट एंड आर्कियोलॉजिकल एविडेंसेस. *इंटरनेशनल लेटर्स ऑफ सोशल एंड ह्युमनिस्टिक साइंस,* 19, (2014), 35-46.

नारायणन, वसुधा (2001). वाटर, वुड एंड विज़डम : इकोलॉजिकल पर्सपेक्टिव्स फ्रॉम द हिंदू ट्रेडिशन. *डीयोडेलस,* खंड 130 (4), 179-206.

निपुणेज, डी.एस. और कुलकर्णी, डी.के. (2010). देव-रहाती : एन एन्शिएंट कांसेप्ट ऑफ बायोडायवर्सिटी कंजरवेशन. *एशियन एग्री-हिस्ट्री.* वॉल्यूम 14 (2), 185-196.

पांडे, अर्चना (2016). सोसाइटी एंड एनवायरनमेंट इन एशियंट इंडिया (स्टडी ऑफ हाइड्रोलॉजी). *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ ह्यूमैनिटीज़ एंड सोशल साइंस इन्वेंशन.* वॉल्यूम 5 (2), 26-31. ISSN (online) 2319-7722. www.ijhssi.org/

सत्पथी, विनोद बिहारी (अदिनांकित). *हिस्ट्री ऑफ साइंस एंड टेक्नोलॉजी इन इंडिया.* DDCE/History (M.A.)/SLM/Paper

तंवर, रेणु (2016). एनवायरनमेंट कंजरवेशन इन एन्शिएंट इंडिया. *आईओएसआर जर्नल ऑफ ह्युमैनिटीज़ एंड सोशल साइंसिस.* वाल्यूम 21(9), Ver.11, 01-04

वाहिया, मयंक (2015). इवेल्यूएटिंग द क्लेम्स ऑफ एन्शिएंट इंडियन एचीवमेंट्स इन साइंस. *करंट साइंस.* वॉल्यूम 108 (12), 25 जून 2015, 2145-48.

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY